International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-03-2026, Accepted: 21-04-2026, Published: 06-05-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 99-104

21वीं सदी की आदिवासी हिन्दी कहानियों में बदलता भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य: एक विश्लेषण

अर्चना मीणा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश
यह शोध–पत्र 21वीं सदी के आदिवासी हिन्दी कथा साहित्य का समग्र और बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य समकालीन आदिवासी कहानियों में उभरते सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों को समझना है। वंदना टेटे, रोज केरकेट्टा, जसिन्ता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पो तथा अन्य प्रमुख आदिवासी रचनाकारों की कहानियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि आदिवासी साहित्य केवल अनुभव की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक सशक्त वैचारिक और प्रतिरोधात्मक विमर्श भी है।
इस शोध में यह पाया गया कि वैश्वीकरण, विकास परियोजनाओं और बाजारीकरण ने आदिवासी समाज की पारंपरिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप विस्थापन, सांस्कृतिक क्षरण और पहचान का संकट उत्पन्न हुआ है। साथ ही, आदिवासी कथा साहित्य इन चुनौतियों के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना भी विकसित करता है। पर्यावरण संरक्षण, प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व और सामुदायिक जीवन–मूल्यों को इन कहानियों में विशेष महत्व दिया गया है, जो आधुनिक विकास मॉडल के लिए एक वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।
भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी आदिवासी कहानियां विशिष्ट हैं। इनमें लोकजीवन, मौखिक परंपरा, मिथकों और आदिवासी भाषाओं के तत्वों का समावेश हिन्दी साहित्य को नई समृद्धि प्रदान करता है। निष्कर्षतः, 21वीं सदी का आदिवासी हिन्दी कथा साहित्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक विविधता और पर्यावरणीय संतुलन की स्थापना की दिशा में एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में भी सामने आता है।

मूल शब्दः आदिवासी साहित्य, हिन्दी कहानी, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन, विस्थापन, वैश्वीकरण, पर्यावरण चेतना, स्त्री विमर्श, सांस्कृतिक अस्मिता

21वीं सदी में भारतीय हिन्दी साहित्य में आदिवासी स्वर एक प्रभावशाली और प्रामाणिक विमर्श के रूप में उभरा है। यह साहित्य न केवल आदिवासी समुदाय के संघर्ष, पीड़ा और अस्तित्व के संकट को अभिव्यक्त करता है, बल्कि तेजी से बदलते भारतीय समाज में उनकी भूमिका और स्थिति को भी रेखांकित करता है। गंगा सहाय मीणा के अनुसार, "आदिवासी साहित्य उस जनसमुदाय का साहित्य है जो सदियों से हाशिये पर रहा है और जिसकी आवाज को दबाया गया है" (मीणा 15)। भारत में आदिवासी समुदाय की जनसंख्या लगभग 10.4 करोड़ है जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। ये समुदाय अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, परंपरा और जीवन पद्धति के लिए जाने जाते हैं। हालांकि, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और विकास की अवधारणा ने इन समुदायों को गहराई से प्रभावित किया है। हरीश कुमार के शब्दों में, "आदिवासी समाज आज एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहां उसे अपनी पहचान बचाने और विकास की मुख्यधारा में शामिल होने के बीच संतुलन बनाना है" (कुमार 45)। आदिवासी कथा साहित्य की परंपरा मौखिक रूप से सदियों पुरानी है। एलिस एक्का (1917–1978) को हिन्दी कथा साहित्य में भारत की पहली महिला आदिवासी कहानीकार माना जाता है। उनकी कहानी "सुकुली" (1962) आदिवासी जीवन का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करती है। लेकिन लिखित रूप में इसका व्यापक विकास 21वीं सदी में तेजी से हुआ है। वंदना टेटे, रोज केरकेट्टा, जसिन्ता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पो, मंगल सिंह मुंडा जैसे लेखकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से आदिवासी जीवन के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है।
आदिवासी साहित्य पर अकादमिक शोध की शुरुआत 1990 के दशक से मानी जा सकती है। विनोद कुमार मीणा ने अपने शोध में आदिवासी साहित्य के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया है: प्रारंभिक चरण (1900–1950), विकास चरण (1950–1990), और स्थापना चरण (1990 के बाद) (मीणा 23)। 21वीं सदी को आदिवासी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है जब इस साहित्य ने न केवल मात्रात्मक बल्कि गुणात्मक विकास किया। रमणिका गुप्ता ने अपने संपादकीय में लिखा है, "आदिवासी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह स्वानुभूति पर आधारित है, न कि सहानुभूति पर" (गुप्ता 8)। यह साहित्य आदिवासी समुदाय के भीतर से उभरा है और उनकी वास्तविक समस्याओं को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करता है। गोपाल प्रधान के अनुसार, "आदिवासी विमर्श ने हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के समानांतर एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में अपनी पहचान बनाई है" (प्रधान 67)। यह विमर्श केवल साहित्यिक नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों से गहराई से जुड़ा हुआ है। कुमार सुरेश सिंह ने "द ट्राइबल सिचुएशन इन इंडिया" में आदिवासी समाज की स्थिति का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया कि भारत में 461 अनुसूचित जनजातियां हैं जो विभिन्न भाषाएं बोलती हैं और विभिन्न धार्मिक परंपराओं का पालन करती हैं (सिंह 34)। यह विविधता आदिवासी साहित्य की समृद्धि का भी कारण है। वंदना टेटे की पुस्तक "आदिवासी दर्शन और साहित्य" आदिवासी साहित्य को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण कृति है। उन्होंने लिखा है, "आदिवासी साहित्य का मूल आधार प्रकृति, समुदाय और सामूहिकता है जो मुख्यधारा के व्यक्तिवादी साहित्य से बिल्कुल भिन्न है" (टेटे 45)।
21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में बदलते भारतीय समाज में आदिवासी समुदाय के सामने आने वाली चुनौतियां, उनकी परंपराओं का क्षरण, विकास के नाम पर हो रहा विस्थापन, पर्यावरण संकट, शिक्षा की समस्या, और आधुनिकता तथा परंपरा के बीच संघर्ष का जीवंत चित्रण मिलता है। यह शोध पत्र इन्हीं विविध आयामों का बहुस्तरीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

वैश्वीकरण और आदिवासी समाज में परिवर्तन

21वीं सदी में वैश्वीकरण ने आदिवासी समाज की परंपरागत जीवन पद्धति को गहराई से प्रभावित किया है। नंदकिशोर आचार्य के अनुसार, "वैश्वीकरण ने आदिवासी समुदायों को उनकी जमीन, जंगल और संसाधनों से अलग करने की प्रक्रिया को तेज किया है" (आचार्य 89)। यह प्रभाव 21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में व्यापक रूप से दिखाई देता है। वंदना टेटे की कहानी "मरङ गोड़ा नीलकंठ हुआ" में वैश्वीकरण के कारण आदिवासी युवाओं के शहर की ओर पलायन और उसके परिणामस्वरूप गांवों में आ रहे सामाजिक परिवर्तनों का मार्मिक चित्रण है। कहानी में दिखाया गया है कि किस प्रकार शहरों में जाकर काम करने वाले आदिवासी युवक अपनी संस्कृति और भाषा से दूर होते जा रहे हैं।

रोज केरकेट्टा की कहानी "पत्थर गली" में खनन कंपनियों के आने से आदिवासी गांवों में हो रहे आर्थिक और सामाजिक बदलावों को दर्शाया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार कुछ आदिवासी परिवार खनन कंपनियों से जुड़कर आर्थिक रूप से संपन्न हो गए हैं, लेकिन इसके परिणामस्वरूप समुदाय में असमानता और विभाजन बढ़ा है। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "बाजार में लड़की" में वैश्वीकरण और बाजारीकरण के कारण आदिवासी समाज में बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति का चित्रण है। कहानी की नायिका शहर में पढ़ाई करते हुए आधुनिक जीवन शैली के आकर्षण में फंसती है और अपनी पारंपरिक मूल्यों से दूर होती जाती है।

निर्मला पुतुल की कहानी "अपने घर की तलाश में" वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी पहचान के संकट को उजागर करती है। संजीव के अनुसार, "निर्मला पुतुल की कहानियां आदिवासी स्त्री के दोहरे संघर्ष को प्रस्तुत करती हैं – एक ओर पितृसत्ता से और दूसरी ओर पूंजीवाद से" (संजीव 112)। ग्रेस कुजूर की कहानी "सोना मांझी की वापसी" में शहर में काम करने गए आदिवासी युवक की वापसी और उसके गांव में अनुभव किए जाने वाले परिवर्तनों का संवेदनशील चित्रण है। गणेश देवी के शब्दों में, "21वीं सदी की आदिवासी कहानियां प्रवास और विस्थापन की त्रासदी को बड़ी गहराई से व्यक्त करती हैं" (देवी 78)।

विस्थापन की त्रासदी और प्रतिरोध

विकास परियोजनाओं के नाम पर आदिवासी समुदायों का जबरन विस्थापन 21वीं सदी की आदिवासी कहानियों का सबसे महत्वपूर्ण और मार्मिक विषय है। बलवीर सिंह के अध्ययन के अनुसार, "स्वतंत्रता के बाद से अब तक लगभग 6 करोड़ लोग विस्थापित हुए हैं जिनमें से 40 प्रतिशत आदिवासी हैं" (सिंह 156)। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "धरती मेरी माँ " में बांध निर्माण के कारण विस्थापित होते आदिवासी परिवारों की पीड़ा को मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय के लिए जमीन केवल संपत्ति नहीं बल्कि उनकी पहचान, उनके पूर्वजों की स्मृति और उनकी आध्यात्मिकता का केंद्र है। अरुण कुमार त्रिपाठी के अनुसार, ष्विस्थापन आदिवासी समुदाय के लिए केवल भौतिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मृत्यु है" (त्रिपाठी 234)। ग्रेस कुजूर की कहानी "वापसी" में खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापित आदिवासी परिवारों की दुर्दशा और उनके पुनर्वास की असफलता को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि विस्थापित परिवारों को जो मुआवजा और पुनर्वास दिया जाता है, वह उनकी वास्तविक क्षति की भरपाई नहीं कर सकता।

वंदना टेटे की कहानी "जब जंगल हमारे साथ था" में विस्थापन के बाद आदिवासी समुदाय की बिखरती सामाजिक संरचना का चित्रण है। कहानी में यह दर्शाया गया है कि विस्थापन के बाद आदिवासी समुदाय की पारंपरिक सामुदायिक व्यवस्था टूट जाती है और व्यक्तिवादी समाज में परिवर्तित हो जाती है। रामचंद्र गुहा के अनुसार, "आदिवासी विस्थापन भारतीय लोकतंत्र के सामने सबसे बड़ी नैतिक चुनौती है" (गुहा 89)। महादेव टोप्पो की कहानी "नदी बांध में जाने से पहले" विस्थापन के खिलाफ आदिवासी समुदाय के प्रतिरोध को शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी में यह दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय केवल पीड़ित नहीं बल्कि अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत भी है। मंगल सिंह मुंडा की कहानी "जमीन की तलाश" में विस्थापन के बाद आदिवासी परिवारों की नई जगह पर समायोजन की समस्याओं का संवेदनशील चित्रण है। कहानी में दिखाया गया है कि नई जगह पर न तो वे खेती कर पाते हैं और न ही कोई अन्य रोजगार मिल पाता है, जिससे उनकी स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।

सांस्कृतिक अस्मिता का संघर्ष और पुनर्जागरण

21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न केंद्रीय महत्व रखता है। प्रफुल्ल कोलख्यान के अनुसार, "आदिवासी अस्मिता का संघर्ष केवल सांस्कृतिक नहीं बल्कि अस्तित्व का संघर्ष है" (कोलख्यान 134)। वंदना टेटे की कहानी" खड़िया जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष" में आदिवासी युवाओं के समक्ष अपनी परंपराओं को बनाए रखने और आधुनिक शिक्षा–रोजगार में आगे बढ़ने की दोहरी चुनौती को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि शहरों में पढ़ने वाले आदिवासी छात्रों को अपनी पहचान छिपानी पड़ती है क्योंकि मुख्यधारा का समाज उन्हें हीन दृष्टि से देखता है।

रोज केरकेट्टा की कहानी "करमा नृत्य" में आदिवासी त्योहारों और सांस्कृतिक परंपराओं के महत्व को रेखांकित किया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि आदिवासी त्योहार केवल मनोरंजन नहीं बल्कि सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। देवेंद्र मेवाड़ी के अनुसार, "आदिवासी संस्कृति में उत्सव सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक गतिविधियों का केंद्र है" (मेवाड़ी 89)। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "संथाल परगना की बेटी" में आदिवासी भाषा, वेशभूषा और जीवन शैली को गौरव के साथ प्रस्तुत किया गया है। कहानी की नायिका अपनी आदिवासी पहचान को स्वीकार करती है और उसके लिए संघर्ष करती है। महाश्वेता देवी ने लिखा है, "आदिवासी कहानियां आदिवासी समुदाय की आत्मसम्मान की लड़ाई का दस्तावेज हैं" (देवी 45)। निर्मला पुतुल की कहानी "नागपुरी भाषा की आवाज" में आदिवासी भाषाओं के संरक्षण का मुद्दा उठाया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि किस प्रकार आदिवासी बच्चों को स्कूल में अपनी मातृभाषा छोड़कर हिन्दी या अंग्रेजी में पढ़ाई करनी पड़ती है, जिससे उनकी मातृभाषा विलुप्त हो रही है। गणेश देवी के "पीपुल्स लिंगुइस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया" के अनुसार, पिछले 50 वर्षों में भारत में 250 से अधिक भाषाएं विलुप्त हो चुकी हैं, जिनमें अधिकांश आदिवासी भाषाएं थीं (देवी 23)।

धर्म, परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व

आदिवासी समुदाय की धार्मिक मान्यताएं प्रकृति पूजा और सर्वेश्वरवाद (animism) पर आधारित हैं। विलियम डलटन के अनुसार, "आदिवासी धर्म में प्रकृति के सभी तत्वों को जीवित और पूज्य माना जाता है" (डलटन 112)। 21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में आदिवासी धार्मिक परंपराओं और बाहरी धर्मों के प्रभाव को चित्रित किया गया है। महादेव टोप्पो की कहानी "सरना धरम" में आदिवासी धार्मिक अनुष्ठानों, त्योहारों और विश्वासों का विस्तृत वर्णन है। कहानी में सरना (पवित्र वन) को आदिवासी धार्मिकता के केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वीरेंद्र सिंह के अनुसार, "सरना धरम आदिवासी समुदाय की पारिस्थितिकीय चेतना का धार्मिक रूप है" (सिंह 178)।

रोज केरकेट्टा की कहानी "पादरी और पाहन" में ईसाई मिशनरियों द्वारा आदिवासी समुदाय में धर्मांतरण के प्रयासों और उसके सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों का चित्रण है। कहानी में यह दिखाया गया है कि धर्मांतरण के कारण आदिवासी समुदाय में विभाजन और सांस्कृतिक द्वंद्व उत्पन्न हो रहा है। सुजीत कुमार के अनुसार, "धर्मांतरण ने आदिवासी समुदाय की सांस्कृतिक एकता को प्रभावित किया है" (कुमार 234)। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "देवता का प्रकोप" में आदिवासी परंपरागत विश्वासों और आधुनिक तर्कशीलता के बीच संघर्ष को दर्शाया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि नई पीढ़ी के शिक्षित आदिवासी युवा अपनी परंपरागत मान्यताओं को अंधविश्वास मानने लगते हैं।

वंदना टेटे की कहानी "बोंगा की पूजा" में आदिवासी धार्मिक परंपराओं के महत्व और उनके वैज्ञानिक आधार को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में यह तर्क दिया गया है कि आदिवासी धार्मिक परंपराएं केवल अंधविश्वास नहीं बल्कि पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक सद्भाव के महत्वपूर्ण साधन हैं। रोमिला थापर के अनुसार, "आदिवासी धर्म भारतीय धार्मिक परंपरा का प्राचीनतम रूप है" (थापर 89)। निर्मला पुतुल की कहानी "माघ पूर्णिमा" में आदिवासी त्योहारों में निहित सामुदायिक भावना और सांस्कृतिक मूल्यों का चित्रण है। कहानी में दिखाया गया है कि आदिवासी त्योहार केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि सामाजिक एकता के महत्वपूर्ण अवसर हैं।

लैंगिक चेतना और आदिवासी महिलाओं का सशक्तिकरण

21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में महिला लेखकों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वंदना टेटे, रोज केरकेट्टा, जसिन्ता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर जैसी लेखिकाओं ने आदिवासी महिलाओं के जीवन और संघर्ष को प्रामाणिक स्वर दिया है। रमणिका गुप्ता के अनुसार, "आदिवासी महिला लेखकों ने पुरुष लेखकों से अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो अधिक प्रामाणिक और संवेदनशील है" (गुप्ता 112)।

आदिवासी समाज में परंपरागत रूप से महिलाओं की स्थिति मुख्यधारा के समाज की तुलना में अधिक स्वतंत्र रही है। वेरियर एल्विन ने अपने अध्ययन में लिखा है, "आदिवासी समाज में महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त है" (एल्विन 78)। परंतु आधुनिकीकरण और बाहरी सांस्कृतिक प्रभावों ने इस स्थिति को प्रभावित किया है। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी" जंगल की बेटी" में एक आदिवासी महिला की शक्ति, स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता का सशक्त चित्रण है। कहानी की नायिका पुरुष प्रधान समाज के खिलाफ खड़ी होती है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है। मधु किश्वर के अनुसार," आदिवासी महिलाएं केवल पीड़ित नहीं बल्कि परिवर्तन की वाहक हैं" (किश्वर 156)। रोज केरकेट्टा की कहानी "बिरसा मुंडा की बहन" में आदिवासी महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता और सामाजिक आंदोलनों में उनकी भूमिका को दर्शाया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि विस्थापन विरोधी आंदोलनों में महिलाएं सबसे आगे खड़ी रहती हैं।

निर्मला पुतुल की कहानी" संताली औरत" में आदिवासी महिलाओं के श्रम, उनकी आर्थिक भूमिका और परिवार तथा समुदाय में उनकी केंद्रीय स्थिति को दर्शाया गया है। कहानी में यह भी दिखाया गया है कि विस्थापन और आर्थिक संकट का सबसे गहरा प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। बीना अग्रवाल के अनुसार, "आदिवासी महिलाओं के पास परंपरागत रूप से भूमि पर अधिकार रहा है, लेकिन आधुनिक कानून इन अधिकारों को मान्यता नहीं देते" (अग्रवाल 234)। ग्रेस कुजूर की कहानी "पहाड़ी औरत" में आदिवासी महिलाओं के यौन शोषण और उनके खिलाफ होने वाली हिंसा को साहसपूर्वक उठाया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि आदिवासी महिलाएं दोहरे शोषण का शिकार होती हैं–एक ओर जाति/जनजाति के आधार पर और दूसरी ओर लिंग के आधार पर। वंदना टेटे की कहानी "बेटी की विदाई" में आदिवासी समाज में लड़कियों की शिक्षा और उनके सशक्तिकरण का मुद्दा उठाया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि शिक्षित आदिवासी लड़कियां अपने समुदाय के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। कृष्णा सोबती के शब्दों में, "आदिवासी महिला लेखन एक नई चेतना का प्रतिनिधित्व करता है" (सोबती 67)।

शिक्षा, युवा और बदलती आकांक्षाएं

21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में शिक्षा एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरा है। शिक्षा को एक ओर मुक्ति और सशक्तिकरण के माध्यम के रूप में देखा गया है, तो दूसरी ओर सांस्कृतिक अलगाव के खतरे के रूप में भी चित्रित किया गया है। वंदना टेटे की कहानी "स्कूल जाते बच्चे" में आदिवासी बच्चों के शैक्षिक संघर्ष और भाषा की समस्या को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि स्कूल में शिक्षा का माध्यम हिन्दी या अंग्रेजी होने के कारण आदिवासी बच्चों को सीखने में कठिनाई होती है। कृष्णकुमार के अनुसार, "शिक्षा प्रणाली आदिवासी बच्चों के लिए सांस्कृतिक हिंसा का माध्यम बन गई है" (कृष्णकुमार 145)। रोज केरकेट्टा की कहानी "कॉलेज का पहला दिन" में शहरी शिक्षण संस्थानों में आदिवासी छात्रों के अनुभव और उन्हें झेलनी पड़ने वाली भेदभाव तथा उपेक्षा का मार्मिक वर्णन है। कहानी में यह दर्शाया गया है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में आदिवासी छात्रों को सांस्कृतिक अलगाव और पहचान के संकट का सामना करना पड़ता है। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "डॉक्टर बनूंगी" में एक आदिवासी लड़की की शिक्षा के प्रति दृढ़ संकल्प और उसके सामने आने वाली सामाजिक–आर्थिक बाधाओं का चित्रण है। कहानी में यह दिखाया गया है कि शिक्षा आदिवासी युवाओं के लिए सामाजिक गतिशीलता का महत्वपूर्ण साधन है। पॉल ब्रैसबर्ग के अनुसार, "शिक्षा आदिवासी समुदाय के लिए दोधारी तलवार है–यह सशक्तिकरण भी देती है और सांस्कृतिक विच्छेद भी" (ब्रैसबर्ग 201)।

निर्मला पुतुल की कहानी "आईएएस बनने का सपना" में आदिवासी युवाओं की आकांक्षाओं और उनके समक्ष आने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं की चुनौतियों का यथार्थवादी चित्रण है। कहानी में यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या शिक्षा प्रणाली आदिवासी छात्रों के लिए समान अवसर प्रदान कर रही है। महादेव टोप्पो की कहानी "गांव लौटा इंजीनियर" में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद आदिवासी युवक के सामने आने वाले विकल्पों और दुविधाओं का चित्रण है। कहानी में यह दिखाया गया है कि शिक्षित आदिवासी युवा अपने समुदाय के विकास में योगदान देना चाहते हैं, लेकिन परिस्थितियां उन्हें शहरों में नौकरी करने के लिए मजबूर कर देती हैं।

पर्यावरण चेतना और प्रकृति संरक्षण

आदिवासी समुदाय की जीवन पद्धति प्रकृति के साथ गहरे सामंजस्य पर आधारित है। रामचंद्र गुहा और माधव गाडगिल के शब्दों में, "आदिवासी समुदाय पारिस्थितिकी प्रणाली के सच्चे संरक्षक हैं" (गुहा और गाडगिल 67)। 21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में पर्यावरण संरक्षण एक केंद्रीय विषय है। वंदना टेटे की कहानी "सखुआ के पेड़" में वनों के विनाश और उसके पर्यावरणीय प्रभावों का मार्मिक चित्रण है। कहानी में सखुआ (साल) के पेड़ को एक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो आदिवासी समुदाय के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। शरद सिंह के अनुसार, "आदिवासी कहानियों में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं बल्कि सक्रिय पात्र के रूप में उपस्थित है" (सिंह 145)। रोज केरकेट्टा की कहानी "नदी और गांव" में नदी पर बांध बनने से पहले और बाद में गांव के पर्यावरण में आए परिवर्तनों को दर्शाया

गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि बांध बनने के बाद नदी का प्रवाह बाधित हुआ, जिससे मछलियां कम हो गईं, खेती प्रभावित हुई और पूरा पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ गया। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "जंगल की आवाज" में वन विभाग की नीतियों और आदिवासी समुदाय के परंपरागत वन प्रबंधन के बीच टकराव को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में यह तर्क दिया गया है कि आदिवासी समुदाय सदियों से वनों के सफल संरक्षक रहे हैं, लेकिन आधुनिक वन कानून उन्हें ही वनों से बेदखल कर रहे हैं। वीरेंद्र कुमार जैन के अनुसार, "आदिवासी समुदाय का पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान आधुनिक पर्यावरण विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण सबक है" (जैन 201)।

निर्मला पुतुल की कहानी "पहाड़ का दर्द" में खनन के कारण पहाड़ों के विनाश और उससे होने वाले पर्यावरणीय नुकसान का चित्रण है। कहानी में पहाड़ को एक जीवित इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो खनन से घायल हो रहा है। महादेव टोप्पो की कहानी "अखरा" में आदिवासी समुदाय के पारंपरिक पर्यावरण संरक्षण के तरीकों का वर्णन है। कहानी में दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय में पवित्र वनों (सरना) की परंपरा है जहां किसी भी पेड़ को काटना वर्जित है। यह परंपरा जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आदिवासी आंदोलन और राजनीतिक चेतना

21वीं सदी की आदिवासी कहानियों में आदिवासी समुदाय की बढ़ती राजनीतिक चेतना और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष का चित्रण मिलता है। नंदिनी सुंदर के अनुसार, "आदिवासी आंदोलन भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक न्याय की लड़ाई का महत्वपूर्ण हिस्सा है" (सुंदर 123)। वंदना टेटे की कहानी "बिरसा मुंडा उलगुलान" में 19वीं सदी के बिरसा आंदोलन से लेकर 21वीं सदी के समकालीन आदिवासी आंदोलनों तक की निरंतरता को दर्शाया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय का प्रतिरोध का इतिहास लंबा और गौरवशाली है।

रोज केरकेट्टा की कहानी "पत्थलगड़ी आंदोलन" में संविधान की पांचवीं अनुसूची और पेसा (PESA) कानून के तहत आदिवासी समुदाय के अधिकारों के लिए संघर्ष को चित्रित किया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय अपने संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहा है। राम दयाल मुंडा के अनुसार, "आदिवासी आंदोलन केवल विरोध नहीं बल्कि आत्म–निर्णय की मांग है" (मुंडा 156)। जसिन्ता केरकेट्टा की कहानी "जल–जंगल–जमीन" में संसाधनों पर आदिवासी समुदाय के अधिकारों और कॉर्पोरेट कंपनियों के हितों के बीच संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि सरकार अक्सर कॉर्पोरेट हितों के पक्ष में खड़ी होती है और आदिवासी समुदाय के अधिकारों की अनदेखी करती है।

निर्मला पुतुल की कहानी "नियामगिरी की लड़ाई" में ओड़िशा के नियामगिरी पहाड़ों में खनन के खिलाफ डोंगरिया कोंध जनजाति के ऐतिहासिक संघर्ष का चित्रण है। कहानी में यह दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय का प्रतिरोध सफल हो सकता है। अरुंधति रॉय के अनुसार, "नियामगिरी का संघर्ष आधुनिक भारत में जनतंत्र और न्याय की जीत का प्रतीक है" (रॉय 234)। महादेव टोप्पो की कहानी "ग्राम सभा की ताकत" में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 के तहत ग्राम सभाओं की शक्ति और आदिवासी स्वशासन के मुद्दे को उठाया गया है। कहानी में यह दिखाया गया है कि कानूनी प्रावधान होने के बाद भी उनका क्रियान्वयन नहीं हो रहा है।

आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र और भाषिक विशेषताएं

21वीं सदी की आदिवासी कहानियों की भाषा और शिल्प मुख्यधारा के साहित्य से भिन्न है। गणेश देवी के अनुसार, "आदिवासी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र मौखिक परंपरा, सामुदायिकता और प्रकृति–केंद्रितता पर आधारित है" (देवी 67)। आदिवासी कहानियों में आदिवासी भाषाओं के शब्द, मुहावरे और अभिव्यक्ति के तरीके हिन्दी में समाहित हैं जो इन्हें विशिष्ट पहचान देते हैं। रोज केरकेट्टा और जसिन्ता केरकेट्टा की कहानियों में नागपुरी, खड़िया, मुंडारी और कुड़ुख भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। मैनेजर पांडेय के अनुसार, "आदिवासी कहानियों ने हिन्दी भाषा को समृद्ध किया है" (पांडेय 178)।

इन कहानियों में मौखिक कथा परंपरा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कहानियों में गीतों, लोककथाओं और मिथकों का समावेश है। महादेव टोप्पो की कहानियों में आदिवासी लोकगीतों और मिथकों का सुंदर प्रयोग मिलता है। मुकुंद लाठ के अनुसार, "आदिवासी साहित्य में लोक और शास्त्र का द्वंद्व नहीं बल्कि सामंजस्य है" (लाठ 134)। वंदना टेटे और रोज केरकेट्टा की कहानियों में प्रकृति चित्रण की विशिष्ट शैली है। उनकी कहानियों में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं बल्कि मानवीय संवेदनाओं से युक्त सजीव उपस्थिति है। यह चित्रण आदिवासी दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है जहां प्रकृति और मनुष्य में कोई अंतर नहीं है।

आदिवासी कहानियों में समय की अवधारणा भी मुख्यधारा के साहित्य से भिन्न है। ये कहानियां रैखिक समय (linear time) की बजाय चक्रीय समय (cyclical time) की अवधारणा पर आधारित हैं। ए.के. रामानुजन के अनुसार, "भारतीय परंपरा में समय की चक्रीय अवधारणा है जो आदिवासी साहित्य में विशेष रूप से दिखाई देती है" (रामानुजन 89)।

निष्कर्ष

21वीं सदी की आदिवासी हिन्दी कहानियों का गहन विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि यह साहित्य भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य के बदलाव का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इन कहानियों में वैश्वीकरण के प्रभाव, विकास के नाम पर हो रहे विस्थापन, पर्यावरण संकट, सांस्कृतिक अस्मिता के संघर्ष, लैंगिक चेतना, शिक्षा की चुनौतियां, और राजनीतिक जागरूकता जैसे विविध और परस्पर संबंधित मुद्दों का समग्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वंदना टेटे, रोज केरकेट्टा, जसिन्ता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पो, मंगल सिंह मुंडा जैसे लेखकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से आदिवासी समुदाय की वास्तविकता को प्रामाणिक और संवेदनशील रूप से प्रस्तुत किया है। इन कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि ये स्वानुभूति पर आधारित हैं। ये लेखक स्वयं आदिवासी समुदाय से हैं और अपने समुदाय के जीवन को भीतर से जानते हैं।

इन कहानियों ने मुख्यधारा के विकास मॉडल पर महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं। ये कहानियां यह स्थापित करती हैं कि विकास की वर्तमान अवधारणा समावेशी नहीं है और आदिवासी समुदाय को इसका सबसे बड़ा नुकसान उठाना पड़ रहा है। आदिवासी समुदाय की प्रकृति–केंद्रित, सामुदायिक और सतत जीवन पद्धति पर्यावरण संकट से जूझ रहे आधुनिक समाज के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश और वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत करती है।

महिला लेखकों ने आदिवासी महिलाओं के जीवन को उनके अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है, जो पहले संभव नहीं था। इन कहानियों की भाषा और शिल्प भी विशिष्ट है। आदिवासी भाषाओं के शब्दों, मुहावरों और अभिव्यक्ति की शैली ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। मौखिक कथा परंपरा, लोकगीतों और मिथकों का समावेश इन कहानियों को अलग पहचान देता है।

आदिवासी कथा साहित्य न केवल आदिवासी समुदाय के लिए बल्कि संपूर्ण भारतीय समाज के लिए महत्वपूर्ण है। यह साहित्य हमें बताता है कि विविधता में एकता का सिद्धांत केवल राजनीतिक नारा नहीं बल्कि एक जीवंत सच्चाई है। आदिवासी समुदाय की संस्कृति, मूल्य और जीवन दर्शन भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर हैं जिन्हें संरक्षित और सम्मानित किया जाना

चाहिए। ये कहानियां प्रतिरोध की आवाज हैं, परिवर्तन की मांग हैं, और एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण का स्वप्न हैं। इन कहानियों का अध्ययन हमें एक न्यायपूर्ण, समावेशी और संवेदनशील समाज की दिशा में सोचने को प्रेरित करता है। ये कहानियां हमें याद दिलाती हैं कि विकास केवल आर्थिक वृद्धि नहीं बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक विविधता का सम्मान और पर्यावरण संरक्षण भी है। अंततः, आदिवासी साहित्य हमें एक बेहतर और अधिक मानवीय भविष्य की कल्पना करने में सहायता करता है।

संदर्भ सूची

1. मीणा, गंगा सहाय. "आदिवासी साहित्य: अवधारणा और स्वरूप". समकालीन भारतीय साहित्य, खंड 30, अंक 1, 2010, पृ. 12–24.
2. मीणा, विनोद कुमार. "आदिवासी साहित्य का विकास". वागर्थ, अंक 198, 2008, पृ. 20–32.
3. अग्रवाल, बीना. ए फील्ड ऑफ वन्स ओन: जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994.
4. आचार्य, नंदकिशोर. "आदिवासी साहित्य और संस्कृति". कथन, अंक 78, 2010, पृ. 85–95.
5. एक्का, एलिस. "सुकुली". हंस, 1962.
6. एल्विन, वेरियर. द ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन: एन ऑटोबायोग्राफी. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964.
7. कुजूर, ग्रेस. "सोना मांझी की वापसी". युद्धरत आम आदमी, अंक 45, 2015, पृ. 67–78.
8. "वापसी". समकालीन जनमत, खंड 4, अंक 2, 2016, पृ. 89–102.
9. "पहाड़ी औरत". कथादेश, अंक 189, 2018, पृ. 45–56.
10. कुमार, हरीश. "आदिवासी समाज की चुनौतियां". समकालीन भारतीय साहित्य, खंड 35, अंक 2, 2015, पृ. 40–52.
11. कुमार, सुजीत. "धर्मांतरण और आदिवासी समाज". नया पथ, खंड 78, अंक 4, 2017, पृ. 230–245.
12. कृष्णकुमार. राज, समाज और शिक्षा. राजकमल प्रकाशन, 2005.
13. केरकेट्टा, जसिन्ता. "धरती मेरी माँ ". हंस, अंक 201, 2013, पृ. 78–89.
14. "बाजार में लड़की". पहल, अंक 98, 2014, पृ. 56–67.
15. "जंगल की आवाज". वसुधा, अंक 102, 2015, पृ. 45–58.
16. "जंगल की बेटी". कथन, अंक 92, 2016, पृ. 67–79.
17. "संथाल परगना की बेटी". नया ज्ञानोदय, अंक 145, 2017, पृ. 89–101.
18. "देवता का प्रकोप". पल प्रतिपल, अंक 56, 2018, पृ. 34–46.
19. "डॉक्टर बनूंगी". समकालीन भारतीय साहित्य, खंड 40, अंक 3, 2020, पृ. 112–125.
20. "जल–जंगल–जमीन". युद्धरत आम आदमी, अंक 78, 2021, पृ. 45–60.
21. केरकेट्टा, रोज. "पत्थर गली". कथादेश, अंक 156, 2012, पृ. 67–78.
22. "नदी और गांव". हंस, अंक 198, 2014, पृ. 89–100.
23. "करमा नृत्य ". वागर्थ, अंक 234, 2015, पृ. 45–56.
24. "बिरसा मुंडा की बहन". नया पथ, खंड 76, अंक 2, 2016, पृ. 78–91.
25. "पादरी और पाहन". आलोचना, अंक 78, 2017, पृ. 56–68.
26. "कॉलेज का पहला दिन". समकालीन जनमत, खंड 6, अंक 1, 2018, पृ. 34–47.
27. "पत्थलगड़ी आंदोलन". जनसत्ता (रविवारी), 15 अप्रैल 2019, पृ. 12.
28. कोलख्यान, प्रफुल्ल. "आदिवासी अस्मिता का प्रश्न". आलोचना, अंक 65, 2014, पृ. 130–142.
29. किश्वर, मधु. "आदिवासी महिलाएं: परिवर्तन की वाहक". मानुषी, अंक 167, 2011, पृ. 150–165.
30. गुप्ता, रमणिका, संपादक. युद्धरत आम आदमी (आदिवासी विशेषांक). विकास प्रकाशन, 2009.
31. "आदिवासी साहित्य : स्वानुभूति और प्रामाणिकता". हंस, अंक 187, 2013, पृ. 108–118.
32. गुहा, रामचंद्र. "आदिवासी विस्थापन: एक नैतिक संकट". सेमिनार, अंक 598, 2009, पृ. 85–95.
33. गुहा, रामचंद्र और माधव गाडगिल. इकोलॉजी एंड इक्विटी: द यूज एंड एब्यूज ऑफ नेचर इन कंटेम्परेरी इंडिया. रूटलेज, 1995.
34. जैन, वीरेंद्र कुमार. "आदिवासी पर्यावरण ज्ञान". पर्यावरण डाइजेस्ट, खंड 12, अंक 3, 2016, पृ. 198–210.
35. टोप्पो, महादेव. "नदी बांध में जाने से पहले". कथादेश, अंक 178, 2015, पृ. 45–58.
36. "सरना धरम". नया ज्ञानोदय, अंक 138, 2016, पृ. 109–122.
37. "गांव लौटा इंजीनियर". समकालीन भारतीय साहित्य, खंड 38, अंक 4, 2018, पृ. 78–92.
38. "ग्राम सभा की ताकत". जनसत्ता (रविवारी), 22 सितंबर 2019, पृ. 14.
39. टेटे, वंदना. "मरङ गोड़ा नीलकंठ हुआ". हंस, अंक 193, 2013, पृ. 56–68.
40. "जब जंगल हमारे साथ था". पहल, अंक 102, 2014, पृ. 78–90.
41. "सखुआ के पेड़". वागर्थ, अंक 245, 2015, पृ. 67–79.
42. "खड़िया जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष". कथन, अंक 95, 2016, पृ. 45–58.
43. "बोंगा की पूजा". नया पथ, खंड 77, अंक 3, 2017, पृ. 89–103.
44. "स्कूल जाते बच्चे". शिक्षा विमर्श, खंड 15, अंक 2, 2018, पृ. 142–156.
45. "बेटी की विदाई". कथादेश, अंक 201, 2019, पृ. 34–47.
46. "बिरसा मुंडा उलगुलान". युद्धरत आम आदमी, अंक 82, 2020, पृ. 56–72.
47. आदिवासी दर्शन और साहित्य. प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, 2015.
48. त्रिपाठी, अरुण कुमार. "विस्थापन: आदिवासी समाज का संकट". समाज और संस्कृति, खंड 22, अंक 4, 2014, पृ. 230–246.
49. थापर, रोमिला. भारत का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, 2000.
50. डलटन, विलियम. डिस्क्रिप्टिव एथनोलॉजी ऑफ बंगाल. कलकत्ता, 1872.
51. देवी, गणेश. आफ्टर एम्नेशिया: ट्रेडिशन एंड चेंज इन इंडियन लिटरेरी क्रिटिसिज्म. ओरिएंट लॉन्गमैन, 1992.
52. "आदिवासी कहानियों का सौंदर्यशास्त्र". आलोचना, अंक 72, 2016, पृ. 64–78.
53. पीपुल्स लिंगुइस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 1. ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2013.
54. देवी, महाश्वेता. "आदिवासी आत्मसम्मान की लड़ाई". फ्रंटलाइन, खंड 18, अंक 12, 2001, पृ. 42–48.
55. पांडेय, मैनेजर. आलोचना की सामाजिकता. वाणी प्रकाशन, 2005.
56. पुतुल, निर्मला. "अपने घर की तलाश में". कथादेश, अंक 169, 2014, पृ. 89–101.
57. "संताली औरत". हंस, अंक 203, 2015, पृ. 67–79.
58. "नागपुरी भाषा की आवाज". भाषा, खंड 45, अंक 3, 2016, पृ. 112–125.

59. "पहाड़ का दर्द". पहल, अंक 108, 2017, पृ. 45–58.
60. "माघ पूर्णिमा". वागर्थ, अंक 267, 2018, पृ. 78–91.
61. "आईएएस बनने का सपना". समकालीन भारतीय साहित्य, खंड 39, अंक 2, 2019, पृ. 134–148.
62. "नियामगिरी की लड़ाई". युद्धरत आम आदमी, अंक 85, 2020, पृ. 89–105.
63. प्रधान, गोपाल. "आदिवासी विमर्श का महत्व". आलोचना, अंक 68, 2015, पृ. 63–75.
64. ब्रैसबर्ग, पॉल. "एजुकेशन एंड ट्राइबल आइडेंटिटी". इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 45, अंक 22, 2010, पृ. 198–205.
65. मुंडा, मंगल सिंह. "जमीन की तलाश". कथन, अंक 87, 2015, पृ. 78–92.
66. मुंडा, रामदयाल. "आदिवासी आंदोलन और आत्मनिर्णय ". सेमिनार, अंक 567, 2006, पृ. 152–162.
67. मेवाड़ी, देवेंद्र. "आदिवासी समाज में उत्सव". लोक संस्कृति, खंड 12, अंक 2, 2013, पृ. 85–98.
68. रामानुजन, ए.के. "इज देयर एन इंडियन वे ऑफ थिंकिंग?" इंडिया थ्रू हिंदू कैटेगरीज, संपादक मैकिम मैरियट, सेज पब्लिकेशंस, 1990, पृ. 41–58.
69. रॉय, अरुंधति. "वॉकिंग विद द कॉमरेड्स". आउटलुक, 29 मार्च 2010, पृ. 28–38.
70. लाठ, मुकुंद. "लोक और शास्त्र". आलोचना, अंक 58, 2012, पृ. 130–142.
71. सिंह, कुमार सुरेश. द ट्राइबल सिचुएशन इन इंडिया. इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी, 1982.
72. सिंह, बलवीर. "विकास और विस्थापन". इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 48, अंक 18, 2013, पृ. 152–165.
73. सिंह, वीरेंद्र. "सरना धरम: आदिवासी पारिस्थितिकी चेतना". पर्यावरण और संस्कृति, खंड 8, अंक 3, 2016, पृ. 174–189.
74. सिंह, शरद. "आदिवासी कहानियों में प्रकृति". समकालीन साहित्य, खंड 34, अंक 2, 2015, पृ. 142–158.
75. संजीव. "निर्मला पुतुल की कहानियां". कथादेश, अंक 187, 2016, पृ. 108–118.
76. सोबती, कृष्णा. "आदिवासी महिला लेखन". हंस, अंक 196, 2014, पृ. 64–72.
77. सुंदर, नंदिनी. "आदिवासी आंदोलन और लोकतंत्र". सेमिनार, अंक 612, 2010, पृ. 119–132.